आतंकवाद और इस्लाम

डा० अब्दुल मुग़नी

विषय-सूची

लेखक-परिचय

अबुल मुबर्रद अब्दुल मुग़नी (जन्म 1936) आधुनिक युग के प्रख्यात आलोचक, विश्वसनीय शोधार्थी और दूरदर्शी विचारक हैं। इनके पिता मौलाना सैयद अब्दुर्रऊफ़ शिक्षा सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने अपने पुत्र की शिक्षा हिफ़्ज़े क़ुरआन (क़ुरआन का पाठ कंठाग्र करना) से कराई। इसके पश्चात् मदरसा इस्लामिया शम्सुलहुदा, पटना में नामांकन कराया।

उन्होंने सन् 1953 ई० में मदरसा शम्सुलहुदा से प्राच्य शिक्षा पूरी करके पटना कॉलेज और पटना विश्वविद्यालय से क्रमशः बी०ए० (प्रतिष्ठा) एवं एम०ए० (अंग्रेज़ी) की डिग्रियां प्राप्त कीं। सन् 1958 ई० में पटना विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति हुई वहीं से प्रसिद्ध अंग्रेज़ आलोचक टी०एस० इलियट पर शोध कार्य करके पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। इस समय वे उक्त विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर के पद पर सेवा कर रहे हैं।

डॉ० अब्दुल मुग़नी एक साथ उर्दू और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं पर अधिकार रखते हैं। दोनों ही भाषाओं में देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विविधि विषयों पर लिखते रहते हैं। अब तक उनकी तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी पुस्तकों में 'इक़बाल और आलमी अदब, इक़बाल का निज़ामेफ़न, इक़बाल का नज़रिया-ए-ख़ुदी, क़ुर्रतुलऐन हैदर का फ़न, अज़मते ग़ालिब, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, द वे ऑफ इस्लाम, औरंगज़ेब, तर्जे-तालीम, दहशतपसंदी और इस्लाम, टीपू सुल्तान, मौलाना मौदूदी की अदबी ख़िदमत' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आतंकवाद और इस्लाम

आजकल संचार माध्यमों के द्वारा 'आतंकवाद' शब्द का बहुत प्रयोग हो रहा है और कुछ राजनीतिक तत्व यह सिद्ध करने की चेष्टा भी कर रहे हैं कि इसका सम्बन्ध इस्लाम से है। हालाँकि सामान्यतः न तो आतंकवाद का अर्थ लोगों को ठीक-ठीक मालूम है और न यह आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि इसका कोई सम्बंध इस्लाम से भी हो सकता है। वस्तुतः उर्दू में शब्द "दहशत पसन्दी" अंग्रेज़ी शब्द Terrorism का अनुवाद है। "टेरर" का अर्थ है बहुत अधिक भय, ख़तरा और आतंक। इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए फ़ारसी शब्द "दहशत" (आतंक) का प्रयोग किया गया और अंग्रेज़ी के "इज़्म" का अनुवाद "पसन्दी" (वाद)। इस प्रकार इसका पूरा अर्थ यह हुआ कि लोगों में भय एवं आतंक पैदा करने के मत का नाम दहशत पसन्दी (आतंकवाद) है। दूसरे शब्दों में जो लोग दूसरों की हत्या और विध्वंस आदि जैसे अवैधानिक, अनैतिक एवं अमानवीय कृत्यों के द्वारा डरा धमका कर अपने अवांछनीय उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं, उनका यह कुकृत्य आतंकवाद है। ये गतिविधियाँ ऐसी अनुचित हिंसा और यातनाओं पर आधारित हैं कि मानव की अन्तरात्मा उसे कभी सहन नहीं कर सकती और न सभ्य संसार इस अत्याचार की कभी अनुमति दे सकता है, क्योंकि यह मानवता को सभ्यता एवं संस्कृति से बर्बरता और असभ्यता की ओर वापस ले जाने के समान है। यह उसी प्रकार की दानवता और क्रूरता का प्रदर्शन है, जिसे अतीत काल में बर्बरता (Barberism) की संज्ञा दी जाती थी। यही कारण है कि पाश्चात्य पत्रकारिता ने आतंकवाद को मध्यकालीन अन्धकार का प्रतीक घोषित किया है। अब यह दूसरी बात है कि इतिहास की यह अवधारणा ठीक उसी प्रकार पश्चिम के राजनीतिक स्वार्थों की उपज है, जिस प्रकार आतंकवाद को इस्लाम से जोड़ने की चेष्टा मुस्लिम विरोधी तत्त्वों के साम्प्रदायिक उद्देश्यों की द्योतक है।

"इस्लाम का आतंकवाद से सम्बंध है।" वस्तुतः यह बात पाश्चात्य पत्रकारिता में विशेषकर उस समय से बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत की जा रही है जब फ़िलिस्तीनी मुक्ति संगठन (Palestinian Liberation Organization) के शस्त्रधारी दल के रूप में "अलफ़तह" ने इस्राईली राज्य और यहूदी (Zionist) आतंकवादियों और उनके समर्थकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मुँहतोड़ जवाब देना शुरू किया। यद्यपि अत्याचारियों के विरुद्ध पीड़ितों की इस गतिविधि में ऐसे तत्व सक्रिय थे, जिनका कोई संगठनात्मक सम्बन्ध फ़िलिस्तीनी मुक्ति संगठन (P. L. O.) से नहीं था और ये अरब उग्रवादी अपने तौर पर इस्राईली बर्बरता के विरुद्ध प्रतिशोध की कार्रवाई करके

विश्व का ध्यान अपने आन्दोलन के उद्देश्यों की ओर आकर्षित कराना चाहते थे। साथ ही इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कि पीड़ितों के साथ न्याय हो, वे मानवजाति की अन्तरात्मा को झकझोरना चाहते थे। बहरहाल निर्दोष लोगों के विरुद्ध किसी प्रकार की अनुचित कार्रवाई एक ज़्यादती है, जिसका कोई औचित्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय विधान में नहीं हो सकता, मगर यह ज़्यादती उस बड़ी ज़्यादती की प्रतिक्रिया थी, जो एक हड़पनेवाली सरकार द्वारा अधिकृत देश के वास्तविक नागरिकों पर वर्षों से अत्यन्त भयानक रूप में होती चली आ रही थी।

अभी वर्तमान में "शैतानी आयात" (The Satanic Verses) के लेखक सलमान रुशदी के विरुद्ध ईरान के इमाम आयतुल्लाह रूहुल्लाह ख़ुमैनी साहब द्वारा जारी किये गये क़त्ल के फ़तवे के परिणामस्वरूप कुछ स्थानों पर जो हिंसक घटनाएँ घटी हैं, उन्हें भी पश्चिमी प्रेस और उसकी अंधभक्ति करते हुए भारतीय प्रेस भी इसे आतंकवाद घोषित करके उसका सम्बन्ध इस्लाम से जोड़ रहा है। इसी क्रम में आधुनिक इस्लामी-जगत् के अन्दर "कट्टरवाद" (Fundamentalism) की प्रवृत्ति का वैचारिक प्रश्न भी उठाया जा रहा है, क्योंकि ईरान की इस्लामी कहलाने वाली क्रान्ति की सख़्त कार्रवाइयों को इस्लामी कट्टरवाद पर आधारित समझा जा रहा है। 'कट्टरवाद' शब्द भी आतंकवाद की तरह पश्चिमी जगत् का आविष्कार है और इस्लाम पसन्दी पर इसको थोपने का काम भी अमरीका और यूरोप ही से शुरू हुआ है।

आतंकवाद की परिभाषा

संयुक्त राष्ट्र संघ ने दिनांक 18 दिसम्बर, 1972 से 7 दिसम्बर, 1987 के बीच हुए विभिन्न अधिवेशनों में पन्द्रह वर्ष केवल 'आतंकवाद' की परिभाषा एवं व्याख्या में बिता दिया, परन्तु आज तक इस शब्द का कोई सर्वसम्मत अर्थ निश्चित नहीं हो सका। यह विषय पारिभाषिक आतंकवाद और उसके राजनीतिक प्रयोग का है। सर्वप्रथम इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत एवं सामूहिक, फिर सार्वजनिक एवं राजकीय आतंकवाद के बीच भेद की बात की जाती है। दूसरी ओर विभिन्न देश और राष्ट्र अपने विभिन्न स्वार्थों के कारण एक-दूसरे पर, एक-दूसरे के विरुद्ध आतंकवाद का आरोप लगाते हैं। सीरिया का बयान है कि मध्य-पूर्व में आतंकवाद का आरम्भ इस्राईल ने 1954 ई० में सीरिया के एक जहाज़ को गिरा कर किया। लीबिया का मत है कि नस्ल-परस्त सरकारों ने दक्षिणी अफ़्रीक़ा, नामीबिया और फ़िलिस्तीन में आतंकवाद से काम लिया है। फिर क्या इराक़ के नाभिकीय रिऐक्टर पर इस्राईली बमबारी और लीबिया के राष्ट्रपति क़ज़्ज़ाफ़ी के निवास स्थान के साथ-साथ त्रिपोली में नागरिक ठिकानों पर अमरीका की बमबारी खुला आतंकवाद नहीं है? यही सवाल

निकारा गुआ, पोलैण्ड और सेन्ट्रल अफ़्रीक़ी गणराज्य की घटनाओं के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है। पश्चिमी यूरोप की यूरोपियन इकानामिक कम्यूनिटी (E. E. C.) में सम्मिलित देश और कनाडा से लेकर जापान, तुर्की, अर्जेन्टीना, इस्राईल और अमरीका तक सभी देशों का विचार है कि आतंकवाद की परिभाषा पर सहमत होना सम्भव नहीं। अलबानिया ने आतंकवाद के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कारणों पर ज़ोर देते हुए वियतनाम, ईरान, ग्रेनाडा, लेबनान और निकारा गुआ में अमरीकी बर्बरता, फ़िलिस्तीनियों, लेबनानियों और अरबों के विरुद्ध इस्राईली व्यवहार, दक्षिणी अफ़्रीक़ा के काले नागरिकों और नामीबिया वासियों पर नस्लपरस्त दक्षिण अफ़्रीक़ी सरकार के हमले और अफ़ग़ानिस्तान पर रूसी सेना की विनाशकारी गतिविधियाँ सबको आतंकवाद के दायरे में सम्मिलित किया है। अतः केवल दो देशों के विरोध और एक की अनुपस्थिति के साथ संयुक्त राष्ट्र ने सभी आतंकवादी गतिविधियों की (जिनमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सरकारें भी सम्मिलित है) निन्दा 153 देशों के वोटों की भारी बहुमत से की।

इन यथार्थों से स्पष्ट है कि आतंकवाद का आरोप आज के विश्व में राष्ट्रों का एक राजनीतिक खिलौना बनकर रह गया है, इसलिए कि जिन देशों को उपर्युक्त बयान में आतंकवादी बताया गया है वे स्वयं दूसरों विशेषकर अपने विरोधियों को आतंकवादी घोषित करते हैं। उदाहरणस्वरूप 22 दिसम्बर, 1987 ई० को अमरीका ने आतंकवाद विरोधी ऐक्ट स्वीकार करके पी०एल०ओ० को आतंकवादी घोषित कर दिया, फिर इसी वर्ष के आरम्भ में अफ़्रीक़ी नेशनल कांग्रेस को भी यही उपाधि दी गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वियतनाम में अमरीका का कुकृत्य, अरब जगत् में इस्राईल की शरारत, अफ़ग़ानिस्तान में रूस की बर्बरता और उन सबसे पहले अल्जीरिया में फ़्रांस की बर्बरता वर्तमान शताब्दी में आतंकवाद के ऐसे घृणित उदाहरण हैं, जिनमें विश्व की शक्तिशाली सरकारें बुरी तरह लिप्त हैं। इनके मुक़ाबले में व्यक्तियों अथवा समूहों की आतंकवादी गतिविधियाँ विनाश या आपदा की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखतीं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक मोड़ पर सन् 42 ई० में अचानक ब्रिटिश शासकों या उनके अधीनस्थ पदाधिकारियों के विरुद्ध जो हिंसा भड़क उठी क्या उसे उन्हीं अर्थों में आतंकवाद कहा जा सकता है, जिस अर्थ में 1857 ई० के असफल स्वतंत्रता आन्दोलन के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य ने स्वतंत्रता प्रेमियों को एक आतंक युग की परिधि में घेर लिया? आज पंजाब में जो स्थिति है, उसे क्या कहा जाए?

बरट्रेंड रसेल ने आतंकवाद के संतुलन (Balance of Terror) के सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात अमरीका और रूस के ज़बरदस्त शक्ति-प्रदर्शन के परिप्रेक्ष्य में कही

है। उसका विचार है कि पूँजीवादी और साम्यवादी ख़ेमों के मुखिया एक-दूसरे के मुक़ाबले में अत्यन्त घातक शस्त्रों के प्रयोग कर देने की धमकी ही से आतंक का वह संतुलन पूरे विश्व में स्थापित किये हुए हैं, जो वर्तमान युग में शान्ति-अन्तराल का कारण है। मानो आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति पर छाए हुए आतंक और बर्बरता की खुली स्वीकारोक्ति है, जो आज की विकसित सभ्य मानवता के लिए आँखें खोलने वाली है।

हिंसा और आतंकवाद

हिंसा (Violence) तो निश्चय ही आतंकवाद (Terrorism) का अंग और मौलिक तत्व है, परन्तु क्रान्तिकारियों और अत्याचारी सत्ता के बीच होने वाले संघर्ष में प्राय: दोनों ओर से जो रक्तपात होता है, क्या वह हर हाल में आतंकवाद है? उत्पीड़ित लोग यदि अत्याचारी शक्ति का मुक़ाबला अपनी ताक़त से करते हैं या शासक के अत्याचारों के विरोध में और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए पीड़ितों से भी कुछ ज़्यादतियाँ हो जाएं तो राज्य का विधान इस सम्बन्ध में जो भी कार्रवाई करे, ज़रूरी नहीं कि इतिहास उसका समर्थन ही करे। ज़बरदस्ती को शांति नहीं कहा जा सकता और न उसके विरुद्ध विद्रोह को अनिवार्यत: अशांति कहा जाएगा। शताब्दियों का घटना-चक्र इस बात का साक्षी है कि अतीत के विद्रोही, भविष्य के क्रान्तिकारी स्वीकार किए गए हैं और उन्होंने बहुधा विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में शान्ति-व्यवस्था और न्याय स्थापित करके मानवजाति की ख़ुशहाली और समृद्धि का साधन जुटाया है। "हर फ़िरऔन के लिए एक मूसा" कहावत का तात्पर्य यही है। बड़े-बड़े पैग़म्बरों, सुधारकों और नेताओं को उस समय के शासकों ने विद्रोही कह कर सताया है, फिर उनके अनुयायियों और सरकारों के बीच ऐसे युद्ध हुए हैं जिनके नतीजे में अत्याचार और भ्रष्टाचार मिटा है और सुधार एवं कल्याण का बोलबाला हुआ है। अत: शक्ति प्रयोग स्वयं कोई अपराध नहीं है और न ही इसका प्रयोग न करना स्वयं में कोई बड़ी नेकी या भलाई की बात है। धैर्य और सहिष्णुता का महत्व अपनी जगह सर्वमान्य है, लेकिन अत्याचारियों के लिए आसान शिकार बन जाना और उनके मुंह में अपने आप को दे देना बिल्कुल उससे भिन्न बात है। एक चीज़ है अत्याचार और दूसरी चीज़ है उसका प्रतिरोध। किसी युद्ध चाहने वाले से समझौता कर लेना हथियार डाल देने के समान है, जबकि उसका मुक़ाबला करना साहस और वीरता है। अत: जो कठोर क़दम अत्याचार व भ्रष्टाचार को मिटाने और फ़सादियों के सिर कुचलने के लिए उठाया जाए, वह निश्चय ही न सिर्फ़ उचित है, बल्कि अपेक्षित है। राज्य का प्रशासन देश और समाज के अवांछित तत्वों के विरुद्ध जो कठोर उपाय करता है उसके सही और उचित होने में किसको संदेह हो सकता है? बीसवीं

शताब्दी के दो व्यापक युद्धों में फासिस्टों और नाज़ियों के विरुद्ध जो सैनिक कार्रवाई हुई वह भी एक ऐसी ही कार्रवाई थी। अतः केवल कठोर उपायों को आतंकवाद कहना उचित न होगा। वास्तव में आतंकवाद निर्दोष और निरीह व्यक्तियों पर अत्याचार और उनको डराने-धमकाने का नाम है, चाहे यह पशुता एवं बर्बरता व्यक्तियों की ओर से हो, या गिरोहों, समूहों और सरकारों की ओर से। आतंकवाद के शब्द में निर्ममता, निर्दयता और अत्याचार का भाव निहित है और यही यथार्थ उसे निन्दनीय बना देता है। हाँ यह सही है कि कोई कठोर क़दम जब अपनी उचित सीमा से बढ़कर बिगाड़ का कारण बन जाए और उसका कोई सुधारवादी उद्देश्य स्पष्ट न हो तो वह आतंकवाद के दायरे में आएगा। ऐसा दमन-चक्र जो दूसरों की जान व संपत्ति और इज़्ज़त-प्रतिष्ठा पर हाथ उठाए, आतंकवाद है, जबकि अपनी और दूसरों की जान, माल और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हथियार उठाना बिल्कुल उचित क़दम है। एक गाल पर बिना किसी कारण थप्पड़ मारनेवाले के सामने प्रत्येक स्थिति में अपना दूसरा गाल भी प्रस्तुत कर देना खुली कायरता है और दुष्टों का न केवल समर्थन है, बल्कि उनके साथ सहयोग है। अहिंसा की अर्द्ध दार्शनिक और अर्द्ध सूफ़ियाना धारणा केवल एक मुखौटा और दिखावा है जिस पर पूर्ण रूप से प्रयोग इस व्यावहारिक संसार में न कभी हो सका है, न हो सकेगा। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध निष्क्रिय अवरोध (Passive Resistance) प्रथम तो तत्कालीन सत्ता की शक्ति के मुक़ाबले में हीन भावना पर आधारित था, दूसरी बात यह है कि वह हर हाल में अवरोध ही था, चाहे वह कितना ही निष्क्रिय क्यों न हो।

"शक्ति के अभाव में शब्द की महत्ता निराधार है।"

कट्टरवाद और आतंकवाद

धर्मनिरपेक्ष (Secular) कहलाने वाले राजनीतिज्ञ, विशेषकर शासक वर्ग और पत्रकार प्रायः विशुद्ध धर्म-परायणता को कट्टरवाद (Fundamentalism) कहकर उसका सम्बन्ध आतंकवाद से जोड़ते हैं। अर्थात् वे धार्मिक भावनाओं के आदर करने को एक ऐसा उग्रवाद (Extremism) मानते हैं जिसका सीधा सम्बन्ध हिंसा से होता है। यह धर्म की अत्यन्त त्रुटिपूर्ण कल्पना है, बल्कि धर्म की सत्यता के सम्बन्ध में यदि अत्यन्त संदेह पर आधारित नहीं तो धर्म से पूर्णतः विमुखता ही इसकी प्रेरक हो सकता है। यह वस्तुतः धर्म को बदनाम करने की एक साज़िश है और जो लोग इसके अभियुक्त हैं उनकी विकृत धारणा यह है कि इतिहास में सबसे अधिक रक्तपात धर्म के नाम पर हुआ है। हालाँकि धर्म पर आरोप लगाने वाले यदि वर्तमान सदी में राष्ट्रीयता और प्रगतिशीलता के नाम पर होने वाले भयंकर रक्तपात पर विचार करें तो धर्म उन्हें बहुत निर्दोष नज़र आएगा। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों में धर्म कहाँ

था ? साम्यवादी रूस के भयंकर शुद्धिकरण (Purges) में धर्म का भी कोई अंश है ? वियतनाम में अमरीका का या अफ़ग़ानिस्तान में रूस का अनावश्यक हस्तक्षेप अथवा फ़िलिस्तीन में इस्राईली बर्बरता या अल्जीरिया में फ्रांस का अत्याचार या इथियोपिया में इटली की बर्बरता, किसी का भी सम्बन्ध किसी धर्म से नहीं है। ईसाई धर्म हो अथवा यहूदी धर्म हो, निर्दोषों की हत्या किसी की शरीअत में मान्य नहीं। पंजाब के वर्तमान आतंकवादी गतिविधियों को भी सिख धर्म की शिक्षा के अधीन बताना सही नहीं होगा, वरना सिखों के विरुद्ध पंजाब से बाहर हुए दंगों को हिन्दू-धर्म की शिक्षा माननी पड़ेगी। यह तथ्य भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी की समझ में भी आ गया था। अतः संसद भवन में पंजाब से सम्बन्धित नवीनतम नीति की घोषणा करते हुए उन्होंने आवश्यक समझा कि कट्टरवाद को आतंकवाद से अलग करके देखो : "एक गिरोह और कुछ लोगों को छोड़कर आतंकवादियों का कोई सम्बन्ध अब कट्टरता या धर्म के साथ नहीं है।" (इण्डिया टुडे, नई दिल्ली 31 मार्च, 1989)

कट्टरवाद का दूसरा अंग्रेज़ी अनुवाद Radicalism है जिसका प्रयोग सामान्यतः मौलिक और सम्पूर्ण क्रान्तिवाद (Fundamental And Total Revolutionism) के लिए होता है अर्थात् एक सम्पूर्ण और सर्वव्यापी क्रान्ति की अभिलाषा, जिसके अनुसार किसी युग और वातावरण की पूरी जीवन-व्यवस्था को पूर्ण रूप से बदल देने की कोशिश की जाती है। और यह सब उस समय होता है जब समाज प्रत्येक दृष्टिकोण से भ्रष्ट और दूषित हो जाता है। फिर जब एक बार ज्ञात एवं प्रचलित इतिहास में ऐसी सार्वभौमिक क्रान्ति का उद्‌भव हो जाता है तो वह हमेशा के लिए एक आदर्श लक्ष्य बन जाता है और जिस सिद्धांत एवं व्यवस्था ने उस को जन्म दिया होता है, वह उसके अनुयायियों के स्वप्नों और कामनाओं का केन्द्र बन जाता है। उसकी हैसियत विश्व और जीवन के सभी मामलों में सत्यता के मापदण्ड की होती है जो एक कसौटी का काम करता है और खरे-खोटे की परख उसी के आधार पर होती है, अतः सत्यता का यह केन्द्र मानव की महानता का स्रोत बन जाता है और चेतना एवं चरित्र की सारी विशेषताओं का प्रेरक एवं लक्ष्य समझा जाता है। यह दुनिया में मानवता की मंज़िल (सफलता) का प्रतीक होता है और हर प्रकार की कल्याण-कामना का लक्ष्य समझा जाता है। इसका महत्व वास्तविक भी होता है, प्रतीकात्मक भी। यह किसी समुदाय के अस्तित्व के उत्तम प्रदर्शन का सर्वप्रथम नमूना (Archetype) होता है और मनोविज्ञान एवं समाज शास्त्र के विद्वान स्वीकार करते हैं कि इसकी छाप किसी समुदाय के स्मरण में सदा के लिए सुरक्षित हो जाती है। यही कारण है कि जब ज़माना बिगड़ता है तो समुदाय अपने अस्तित्व के सैद्धान्तिक स्रोत से जितना दूर हो चुका होता है उसके सामूहिक मनःस्थिति में उसकी याद उतनी ही तीव्र होती है और

उसकी अन्तरात्मा उसे पुनः पाने के लिए उतनी ही व्याकुल हो जाती है। यह व्याकुलता न केवल बीते वैभव की पुर्नस्थापना के लिए होती है, बल्कि उसे प्राप्त करने योग्य बनने के लिए अपने अन्दर हर प्रकार के प्रदूषणों से पूरी सफ़ाई-सुथराई के लिए भी होती है, इसलिए कि पुराने वैभव एवं महानता को दोबारा प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार की कुरीतियों और पथ-भ्रष्टता का सुधार आवश्यक समझा जाता है। ऐसी स्थिति में धर्म-परायणता का दृष्टिकोण ही उच्च-विचार और प्रगतिशीलता का चिह्न बन जाता है। यह मानो बुरी धारणाओं एवं विश्वासों पर अच्छी धारणाओं की विजय है, जिसकी सबसे बड़ी पहचान सत्यनिष्ठा और शुद्धता है।

इस परिस्थिति को पाश्चात्य, विशेषकर मसीही एवं कलीसाई इतिहास के उतार चढ़ाव के दृष्टिकोण से देखना ग़लत होगा और आजकल कट्टरवाद पर बहस करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस यही ग़लती कर रहा है। वास्तव में Fundamentalism का शब्द Secularism ही की तरह यूरोप के अन्धकारमय मध्ययुग (Dark Middle Ages) के पश्चात् पुनर्जागरण और धर्म-सुधार (Revainaule And Reformation) के युग से मिला हुआ पश्चिमी देशों में चर्च और राज्य (Church And State) के उस संघर्ष का परिणाम है जिसके नतीजे में दीन और दुनिया (धर्म और राजनीति) एक-दूसरे से अलग हो गए और कलीसा वालों की पथ-भ्रष्टता और अत्याचार के कारण अधर्मी बुद्धिजीवियों ने Catholicism के मुक़ाबले Puritanism की परिभाषाएं बना डालीं। और उन्हें धार्मिक संदर्भ से विलग कर ज्ञान व साहित्य का मुहावरा बना दिया। इस मुक़ाबले में उदारता को प्रगतिशीलता और दृढ़ निष्ठा को रूढ़िवादिता समझ लिया गया। पूर्वी यूरोप के कट्टर बाज़नतीनी कलीसा (Byzantian Orthodox Church) के भ्रष्टाचार के विरुद्ध पश्चिमी यूरोप के उदारवादी रोमन कलीसा (Catholice Roman Church) की दुश्चरित्रता से भी अधिक कड़ी प्रतिक्रिया इस सम्बन्ध में हुई। यही कारण है कि कार्ल मार्क्स का साम्यवाद जर्मनी, इंग्लैण्ड और फ्रांस से निकलकर रूस में विकसित हुआ।

धर्म को राजनीति से निष्कासित और धर्म को दुनिया के रास्ते में प्रतिरोध समझ कर के ही पाश्चात्य जगत् वालों ने अत्यन्त अल्पबुद्धि और अपात्रता का यह प्रमाण दिया कि दुनियापरस्ती से व्याकुल होकर धर्म की ओर पलटने की प्रवृत्ति को कट्टरवाद से सम्बोधित किया, जो साम्यवादियों की ईजाद की गई राजनीतिक गाली, प्रतिक्रियावादी विचारधारा (Reactionary View) का दूसरा नाम है और यह नाम एवं उपाधि दोनों, "एक साज़िश है फ़क़त दीन व मुरव्वत के ख़िलाफ़।"

आतंकवाद और इस्लाम

आतंकवाद और इस्लाम बिल्कुल विपरीतार्थक शब्द हैं और ये दोनों एक जगह-

एकत्रित नहीं हो सकते, यहाँ तक कि इस्लाम का नाम लेकर कभी और कहीं कुछ मुसलमान भी आतंकवाद को बढ़ावा दें तो इस्लाम से उसका कोई सम्बन्ध हरगिज़ नहीं होगा। बल्कि यह इस्लाम धर्म की एक अवहेलना और शरीअत-ए-मुहम्मदी में एक परिवर्तन होगा, जिसे दीन व शरीअत के बदतरीन शोषण की संज्ञा दी जाएगी। इस्लाम यातनाएं देने और भ्रष्टाचार फैलाने की अनुमति नहीं देता। यही बात दूसरे उन धर्मों के विषय में भी कही जा सकती है जिनकी वास्तविकता वह्य-ए-इलाही (ईश्वरीय प्रकाशना) पर आधारित है, चाहे उनके अनुयायियों ने अपने नबियों की शिक्षाओं को कितना ही विकृत कर दिया हो, यहाँ तक कि उनके स्वार्थी धर्मनेता अपने धर्म का प्रयोग कितने ही ग़लत उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर रहे हों, इसलिए कि दीन (धर्म) पूरे विश्व के पालनहार की निर्धारित की हुई वह जीवन-पद्धति और जीवन-व्यवस्था है जो बिना भेद-भाव के पूरी मानवता की सुख-समृद्धि के लिए है। धर्म ईश्वर का बनाया हुआ विधान है और फ़ितरत (प्रकृति) के अनुकूल है। प्रकृति अपनी वास्तविकता की दृष्टि से आतंकवादी नहीं, वरना इस धरती को इंसान के लिए उपयोगी नहीं बनाया जाता, न ही आसमान कवियों की कल्पना के विपरीत मेहरबान होता। दुनिया की जलवायु आदमी के लिए इसीलिए अनुकूल है कि वह विशेषकर उसी के लिए बनाई गई है।

मानव-जगत् की इस सच्चाई का प्रवर्तक सबसे बढ़कर इस्लाम ही है जिसकी पहचान इतिहास में पिछले डेढ़ हज़ार वर्षों से शरीअत-ए-मुहम्मदी के द्वारा की जा रही है, क्योंकि दीन (धर्म) की सार्वभौमिक कल्पना हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की रिसालत के बाद उनकी शरीअत में ही केन्द्रित हो चुकी है। यह शरीअत दीन-ए-इस्लाम की पिछली तमाम शरीअतों का संग्रह है और रसूल-ए-करीम (सल्ल०) की शिक्षाएँ पिछले तमाम नबियों की पुष्टि और उनकी शिक्षाओं का संग्रह करती हैं। अतः वह्य-ए-इलाही (ईश्वरीय प्रकाशना) के अंतिम ग्रंथ के रूप में किताबुल्लाह (कुरआन) और उसके व्यावहारिक नमूने की हैसियत से सुन्नत-ए-रसूलुल्लाह (हदीस) इस प्राकृतिक-विधान और प्राकृतिक-व्यवस्था के आदेशों और निर्देशों और उनकी व्याख्या एवं प्रयोग की दस्तावेज़ हैं, जो ईश्वर ने धरती पर इंसान के शांतिपूर्ण और पवित्र जीवन के लिए प्रस्तावित और संकलित की है। अतः इस्लामी जीवन विधान सुख-समृद्धि और विकास की एक मात्र ज़मानत है और दुष्टाचार एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध सबसे प्रभावकारी सुरक्षा का साधन।

इस्लाम की परिभाषा

इस्लाम एक अरबी शब्द है जिसकी धातु (मूल) 'स-ल-म' है और अरबी व्याकरण के अनुसार विभिन्न निष्पत्ति के अनुसार इस धातु से उत्पन्न होने वाले शब्द

'इस्लाम' एवं 'तस्लीम' हैं, जबकि इस धातु के अक्षरों से बने एक शब्द "सिल्म" का शाब्दिक अर्थ "अमन" (शांति) है। फिर 'सलाम' और 'सलामत' के शब्द भी हमारी भाषा में सलामती के अर्थ में प्रयुक्त एवं प्रचलित हैं। स्वयं 'इस्लाम' शब्द का अर्थ अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर देना, उसके आगे सिर झुकाना, उसकी आज्ञा पालन और भक्ति है। इस्लामी दृष्टिकोण से मानव का सांसारिक जीवन ईश-भक्ति के लिए है और ईश-भक्ति विश्व-शांति की ज़मानत है। मुस्लिम-समाज में "अस्सलामु अलैकुम" (तुम पर सलामती हो) का रिवाज एक इस्लामी पहचान पर आधारित है और इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए शुभ-सूचना और शुभ-संदेश है। इसका अर्थ यह है कि इस्लाम दुनिया में जो समाज बनाना चाहता है वह पूर्ण रूप से रहमत और वरदान है। इसकी लोगों के बीच आपस में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और सहयोग इसकी विशेष पहचान है।

इस्लाम की इस विशेषता का संकेत "बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम" का वह प्रसिद्ध वाक्य है जिससे मुस्लिम-समाज और उसके लोगों का प्रत्येक काम आरम्भ होता है और जो क़ुरआन मजीद की तमाम सूरतों का आरम्भ बिन्दू है। इस वाक्य में ईश्वर की जिन दो विशेषताओं को बयान किया गया है वह रहमत (करुणा, दया, कृपा) पर आधारित है। इसका भावार्थ यह है कि रहम व करम (दया, कृपा) जिस प्रकार ईश्वर की सबसे बड़ी विशेषता है उसी प्रकार उसके बन्दों की भी उत्कृष्ट विशेषता है। उनके जीवन में सभी गतिविधियाँ और क्रिया-कलाप ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति के लिए होते हैं और उनका प्रत्येक काम ईश्वर की दया और कृपा की ओर संकेत करता है। रहम-व-करम की इस भावना से बढ़कर शान्ति और सुरक्षा की ज़मानत क्या दुनिया में हो सकती है?

सब के लिए रहमत

क़ुरआन शरीफ़ की प्रस्तावना अर्थात् सूरा-ए-फ़ातिहा में अल्लाह की विशेषताएँ, रहमान व रहीम से पहले उसकी हस्ती को "रब्बुल आलमीन" अर्थात् समस्त जगत् का पालनहार कहा गया है और ये दोनों विशेषताएं ईश्वर की उसी कृपाशीलता से सम्बन्धित हैं, बल्कि उसकी व्याख्या हैं। अरबी में "रब्ब" का अर्थ बहुत विस्तृत है और उसकी एक मौलिक विशेषता सब के लिए रहमत है। ईश्वर पूरे जगत् और उसमें विद्यमान समस्त वस्तुओं का पालनहार और संरक्षक है और पूरी सृष्टि अपने सृष्टिकर्त्ता की क्षत्रछाया ही में परवरिश पा रही है। रब की व्याख्या में दो पहलू मुख्य हैं। पहला यह कि ईश्वर को अपने बन्दों के साथ ऐसा गहरा और प्रबल प्रेम है जैसा कि माँ को अपने बच्चे से होता है, दूसरा यह कि बन्दों पर ख़ुदा की शफ़क़त (स्नेह) बाप के स्नेह की तरह छाया किए हुए है। ये दोनों पहलू प्रेम एवं स्नेह की पराकाष्ठा

से सम्बंध रखते हैं। इस दृष्टिकोण से इस्लाम में "ईश्वर" की कल्पना ईश्वर को मसीही कल्पना के अनुसार केवल बाप कह देने के "दोषपूर्ण विश्वास" से बहुत बेहतर है, क्योंकि इस कल्पना के अनुसार ईश्वर के साथ इंसान का कोई वंशानुगत सम्बन्ध नहीं होते हुए भी इस रिश्ते की मुहब्बतों का इतना बड़ा अनुदान ख़ुदा की ओर से इंसान को मिल जाता है जो किसी वंशगत सम्बन्धों से कभी मिल नहीं सकता। यही कारण है कि रब का अर्थ स्वामी व संरक्षक और मालिक व हाकिम भी है, अर्थात् सामान्य एवं सामूहिक रूप से ईश्वर हर दृष्टि से इंसान का पालनहार, संरक्षक, सहायक और मार्गदर्शक है। यह सामान्य और व्यापक रहमत की भावना है और उससे बढ़कर दया एवं करूणा की कोई कल्पना नहीं हो सकती। यह सत्य बहुत ही स्पष्ट रूप से क़ुरआन की निम्नलिखित आयतों में व्यक्त किया गया है —

> "दण्ड तो मैं जिसे चाहूंगा दूंगा, मगर मेरी दयालुता हर चीज़ पर छाई हुई है।" –7 : 156

यही बात एक और आयत में इस प्रकार कही गई है–

> "उसने दयालुता की नीति अपने लिए अनिवार्य कर ली है।" –6 : 12

इसी ईश्वरीय कृपा का चमत्कार है कि मनुष्य की अनेक ग़लतियों और अवज्ञा के बावजूद उसे लगातार छूट दी जाती रही है।

> "अगर कहीं वह लोगों को उनकी करतूतों पर (तुरन्त) पकड़ता तो धरती में किसी प्राणधारी को जीवित न छोड़ता। किन्तु वह उन्हें एक नियत समय के लिए मोहलत दे रहा है।" –35 : 45

प्रतिकार का विधान

निश्चय ही इस जगत् का पालनहार सर्वशक्तिमान और न्यायप्रिय है और उसने दुनिया में एक सर्वव्यापी, अपरिवर्तनशील प्रतिकार का विधान (Law Of Retribution) स्थापित किया है, जिसके आधार पर जीवन में ऐसा संतुलन पाया जाता है, जो यदि नहीं होता तो पूरे विश्व में बिखराव पैदा हो जाता और कोई ऐसी मापदण्ड-व्यवस्था स्थिर नहीं रहती जिसके अनुसार भले-बुरे के नैतिक फ़ैसले करके दुष्टों को सज़ा और नेक लोगों को इनाम दिया जा सके। यह व्यवस्था भी ईश्वर की करुणा का ही एक पहलू है। क्योंकि इसी के अन्तर्गत बड़े-बड़े अपराधियों को दण्ड देकर बिगाड़ एवं भ्रष्टाचार का निरन्तर दमन होता रहता है और इस धरती का वातावरण अभी तक इंसान के लिए आनन्दमय है। प्रतिकार का विधान ही इस वातावरण को बार-बार साफ़ करके दूषित होने से बचाता रहता है, वरना ज़ालिमों की फैलाई हुई गन्दगियों में मानवता का दम घुट चुका होता। वास्तव में विश्व इतिहास

में असमाजिक तत्वों की विध्वंसकारियों और आतंकवादी गतिविधियों पर सबसे बड़ी बाधा और चेतावनी ईश्वरीय शक्ति का प्रतिकार-विधान ही है। क़ुरआन में है—

"फिर जिस किसी ने कण भर नेकी की होगी, वह उसको देख लेगा। और जिसने कण भर बुराई की होगी, वह उसको देख लेगा।" –99 : 7-8

"थल और जल में बिगाड़ पैदा हो गया है लोगों के अपने हाथों की कमाई से, ताकि (ईश्वर) मज़ा चखाए उनको उनके कुछ कुकर्मों का, कदाचित् वे बाज़ आ जाएं।" –30 : 41

"तेरा प्रभु ऐसा नहीं है कि बस्तियों को अकारण विनष्ट कर दे, जबकि उनके निवासी सुधारक हों।" –11 : 117

"आख़िर अल्लाह को क्या पड़ी है कि तुम्हें अकारण यातना दे? अगर तुम कृतज्ञता दिखलाते रहो और ईमान की नीति पर चलो।"

–4 : 147

"यदि इस प्रकार अल्लाह मानवों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के द्वारा हटाता न रहता, तो धरती की व्यवस्था बिगड़ जाती, किन्तु संसार के लोगों पर अल्लाह की बड़ी उदार कृपा है।" –2 : 251

यह विश्व का निरीक्षण है जो दुनिया से आख़िरत तक जारी है, प्रकृति का पहरा हर ओर लगा हुआ है, प्रत्येक वस्तु की समीक्षा की जा चुकी है और सारे काम एक नियम से हो रहे हैं, कठोरता एवं कोमलता के मिश्रण से एक सन्तुलित मार्ग स्पष्ट है, व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार की समीक्षा व्यक्तिगत एवं सामुदायिक रूप से की जा रही है और इतिहास सबको सबक़ दे रहा है।

रहमते आलम (जगत् के लिए रहमत)

जिस प्रकार ईश्वर ने स्वयं को 'रब्बुल आलमीन' (जगत् का पालनहार) कहा है, उसी प्रकार हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को 'रहमतुल्लिल आलमीन' की उपाधि दी है। क़ुरआन में है—

"हे नबी हमने तो तुमको दुनियावालों के लिए दयालुता बनाकर भेजा है।" –21 : 107

इस प्रकार रहमते आलम (सल्ल०) का चरित्र-चित्रण करते हुए पवित्र क़ुरआन ने आप (सल्ल०) के लिए "रऊफ़ुर्रहीम" (अत्यन्त दयालु और कृपाशील) की उन दयालुता-पूर्ण विशेषताओं का प्रयोग किया है जिनसे विश्व-स्वामी ईश्वर की हस्ती भी अलंकृत है। अपने अन्तिम संदेष्टा की विनम्रता और स्नेहयुक्त स्वभाव का वर्णन ईश्वर ने क़ुरआन में एक स्थान पर इस व्याख्या के साथ किया है कि यह उसकी विशेष कृपा है—

"(हे पैग़म्बर) यह अल्लाह की बड़ी कृपा है कि तुम इन लोगों के लिए बहुत नर्म स्वभाव के हो। –3 : 159

इस सम्बन्ध में ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का यह कथन अत्यन्त विचारनीय है—

"संपूर्ण सृष्टि ईश्वर का परिवार है, अत: ईश्वर को सबसे अधिक प्रिय वह है जो उसके परिवार के साथ अच्छा व्यवहार करे।"

अब जो शरीअत (जीवन-व्यवस्था) रब्बुल आलमीन (समस्त विश्व के पालनहार) द्वारा प्रस्तावित हो और उसको अपने जीवन में अपना कर रहमतुल्लिल आलमीन (विश्व के लिए दयालुता) ने दिखाया हो, उस शरीअत में ईश्वर की सृष्टि के लिए कृपा, दया और न्याय का होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि मानवता के इतिहास में सामाजिक न्याय (Social Justice) का सर्वोत्तम उदाहरण दुनिया के समक्ष हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की शरीअत ही ने प्रस्तुत किया है। ऐसी आदर्श जीवन-व्यवस्था मानव के लिए आतंक नहीं शांति का साधन है, भय और ख़तरा नहीं, शांति और सुरक्षा का कारण है।

इस्लाम में युद्ध और शांति की कल्पना

सर्वसुलभ दयालुता और रहमते आलम के परिप्रेक्ष्य में इस्लाम में शांति और युद्ध की कल्पना का अध्ययन अत्यन्त लाभकारी रहेगा। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम देखना चाहिए कि इस्लाम की दृष्टि में मानव-प्राण का महत्व कितना अधिक है। संसार की पहली हत्या का वर्णन करते हुए दिव्य क़ुरआन में धरती के सबसे पहले आतंकवादी, क़ाबील (आदम के पुत्र) को उसके भाई उसकी दुश्मनी का शिकार, हाबील का यह जवाब दर्ज किया गया है कि, "यदि तू मुझे क़त्ल करने के लिए हाथ उठाएगा तो मैं तुझे क़त्ल करने के लिए हाथ न उठाऊँगा।" अर्थात् एक सदाचारी ईश-भक्त कभी क़त्ल की चेष्टा नहीं करेगा। परन्तु जब इस सुधारवादी और समझौतावादी जवाब के बावजूद दुष्ट क़ाबील ने अन्ततः हाबील को क़त्ल कर दिया तो इस घटना पर प्रकाश डालते हुए और टिप्पणी करते हुए क़ुरआन, अल्लाह के इस आदेश की घोषणा करता है—

"इसी कारण से बनी इस्राईल के लिए हमने यह आदेश लिख दिया था कि जिसने किसी मनुष्य को हत्या के बदले या धरती में बिगाड़ फैलाने के सिवा किसी और कारण से मार डाला उसने मानो सारे ही मानवों की हत्या कर दी और जिसने किसी के प्राण बचाए उसने मानो सारे मानवों को जीवन दान किया।" –5 : 32

इस आयत के तुरन्त बाद दूसरी ही आयत में भूतल पर दंगा-फ़साद फैलानेवालों

की सज़ा यह बतलाई गई है कि अगर वे पकड़ में आने से पहले तौबा (बुराई छोड़ने का प्रण) न करें तो उन्हें परिस्थिति के अनुसार क़त्ल या देश निकाले की सज़ा दी जाए। इस सज़ा की व्याख्या करते हुए वर्तमान युग के सबसे बड़े इस्लामी चिन्तक, मौलाना अबुल आला मौदूदी (रह०) अपने अनूदित क़ुरआन मजीद में लिखते हैं —

"भूतल से अभिप्राय यहाँ वह देश या वह क्षेत्र है जिसमें शांति-व्यवस्था स्थापित करने का दायित्व इस्लामी सत्ता ने ले रखा हो और ख़ुदा व रसूल (सल्ल०) से लड़ने का अर्थ उस सदाचारपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध युद्ध करना है, जो इस्लामी सत्ता ने देश में स्थापित कर रखी हो। इस्लामी विधि शास्त्रियों की दृष्टि में इस से मुराद वे लोग हैं जो सशस्त्र होकर और जत्था बनाकर डाकाज़नी और लूटमार करें।"

स्पष्ट रहे कि इस आयत में बिगाड़ और फ़साद फैलानेवालों को ख़ुदा और रसूल से लड़नेवाला बताया गया है। इसके अतिरिक्त दूसरे कई स्थानों पर पवित्र क़ुरआन ने 'फ़ितना' को क़त्ल से बड़ा और अधिक जघन्य अपराध घोषित किया है। क्योंकि इसकी विनाशकारियाँ इतनी विस्तृत और इतनी ज़बर्दस्त होती हैं कि पूरी की पूरी क़ौम तबाह और बर्बाद होकर रह जाती है। अतः 'फ़ितना' व फ़साद के अभियुक्तों के लिए इस्लाम शीघ्र प्रभावी सज़ाएँ प्रस्तावित करता है, ताकि समाज में बिगाड़ और आतंकवाद को फलने-फूलने का अवसर न मिले और निर्दोष व्यक्ति उसका शिकार न बनें। स्पष्ट है कि जिस समाज में बिगाड़ और फ़साद की खुली छूट होगी उसमें मनुष्य को वास्तविक राहत और प्रगति का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता, चाहे वहाँ कुछ व्यक्ति अपनी सत्ता और धन के बल पर कुछ दिनों के लिए कितनी ही मौज-मस्ती कर लें। अतः फ़ितना व फ़साद फैलानेवाले स्वार्थी तत्त्वों को क़ुरआन चेतावनी देता है—

"वह परलोक का घर तो हम उन लोगों के लिए आरक्षित कर देंगे, जो धरती में अपनी बड़ाई नहीं चाहते, और न बिगाड़ पैदा करना चाहते हैं। और परिणामतः भलाई (ईश्वर का) डर रखने वालों ही के लिए है।"

–28 : 83

इस सम्बन्ध में इस्लाम विश्व में एक सर्वव्यापी सुधार का सिद्धान्त प्रस्तुत करके मानवता के सकारात्मक आधारों और उसके रचनात्मक उद्देश्यों पर बल देता है। क़ुरआन में है—

"धरती में बिगाड़ पैदा न करो, जबकि उसका सुधार हो चुका है, और अल्लाह ही को पुकारो भय के साथ और लोभ के साथ। निश्चय ही अल्लाह की दयालुता अच्छे चरित्र वाले लोगों के समीप है।" –7 : 56

इस आयत में एक विश्व-व्यापी संतुलन की ओर संकेत है, जिसकी स्थापना पर ही जीवन की समस्त क्रिया-कलापों का अस्तित्व निर्भर करता है। अतः जो लोग सरकशी और अत्याचार करके इस संतुलन को भंग करते हैं वे फ़ितना (फ़साद) फैलानेवाले और भ्रष्ट एवं अपराधी हैं जिनसे संघर्ष और उनका दमन हर इंसान का एक नैतिक दायित्व होने के साथ-साथ उसकी प्रकृति की मांग भी है। क़ुरआन इस मांग को स्वीकार करते हुए भी प्रतिकार के लिए उचित सीमाएँ निश्चित करता है–

"और यदि तुम लोग बदला लो तो बस उतना ही ले लो जितनी तुम पर ज़्यादती की गई हो। किन्तु यदि तुम धैर्य से काम लो तो निश्चय ही यह धैर्यवानों ही के लिए अधिक अच्छा है।" –16 : 126

"अतः जो तुम पर हाथ उठाए, तुम भी उसी तरह उस पर हाथ उठा सकते हो, अलबत्ता ईश्वर से डरते रहो और यह जान रखो कि ईश्वर उन्हीं लोगों के साथ है, जो उसकी सीमाओं के उल्लंघन से बचते हैं।" –2 : 194

यह अत्याचार के मुक़ाबले में एक रक्षात्मक ढंग है जिसका उद्देश्य स्पष्टतः अत्याचार की रोकथाम और न्याय-व्यवस्था की स्थापना है। यही वह उच्चतम सृजनात्मक एवं सुधारवादी उद्देश्य है जिसके लिए इस्लाम ने अपने अनुयायियों पर जिहाद अनिवार्य किया है। क़ुरआन में है–

"अनुमति दी गई उन लोगों को जिनके विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है, क्योंकि वे उत्पीड़ित हैं, और अल्लाह को निश्चय ही उनकी सहायता की सामर्थ्य प्राप्त है। ये वे लोग हैं जो अपने घरों से अनुचित रूप से निकाल दिए गए केवल इसलिए कि वे कहते थे, हमारा प्रभु अल्लाह है।"

–22 : 39-40

इस आयत (39) पर मौलाना मौदूदी की टिप्पणी इस प्रकार है–

"यह अल्लाह के रास्ते में युद्ध करने के बारे में सबसे पहली आयत है जो अवतरित हुई। इस आयत में सिर्फ़ अनुमति दी गई थी। बाद में सूरह बक़रा की आयतें 190 से 193 और 316 और 224 अवतरित हुईं, जिनमें युद्ध का आदेश दिया गया है। इन आदेशों में केवल कुछ महीनों का अन्तराल है। हमारे शोध के अनुसार यह अनुमति ज़िलहिज्जा सन् 1 हिजरी में अवतरित हुई और आदेश बद्र की लड़ाई से कुछ पूर्व रजब या शाबान 2 हिजरी में अवतरित हुआ।"

जिहाद का आदेश भी न्याय की शर्त के साथ दिया गया —

"और तुम अल्लाह के मार्ग में उन लोगों से लड़ो, जो तुमसे लड़ते हैं, परन्तु ज़्यादती न करो कि अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसंद नहीं

करता।"

–2 : 190

इस आदेश में न्याय की शर्त और उसकी नसीहत के अलावा दो मौलिक बातें ये हैं कि लड़ना उन लोगों से है जो लड़ाई की शुरूआत कर रहें हैं और लड़ना भी केवल ईश्वरीय मार्ग में है, किसी देश की सत्ता हथियाने की लोलुपता, युद्ध में प्राप्त संपत्ति के लोभ और निजी प्रतिशोध की भावना से नहीं। इसलिए इसी परिप्रेक्ष्य में आगे की आयतें स्पष्ट करती हैं कि–

(1) अल्लाह और रसूल से अनुचित लड़नेवाले अगर अपनी युद्ध-प्रवृत्ति से "बाज़ आ जाएँ तो अल्लाह क्षमा करने और दया करने वाला है।"

(2) लड़ाई केवल उस समय तक जारी रखी जाए जब तक फ़ितना (अत्याचार) बाक़ी है और ख़ुदा और रसूल की अवज्ञा करनेवाले ये अत्याचारी इस सीमा तक हतोत्साहित न हो जाएँ कि सत्य का बोलबाला हो जाए।"

(3) और "ज़ालिमों (अत्याचारियों) के अतिरिक्त किसी पर हाथ उठाना उचित नहीं।"

एक दूसरे अवसर पर सूरह अननिसा की आयतें 75 और 76 में बताया गया है कि जब किसी स्थान पर "कमज़ोर मर्द, औरतें और बच्चे" अत्याचारों के विरुद्ध फ़रियाद करें तो उनकी दादरसी भी करनी चाहिए और ज़ालिमों के पंजे से उनकी रिहाई के लिए हथियार उठाना चाहिए, मगर ईश्वर के आज्ञाकारी बन्दों का युद्ध हमेशा "ईश्वर की राह में" होता है, जबकि अवज्ञाकारियों का युद्ध "शैतान की राह" में होता है। इसी प्रकार सूरह निसा ही की 88 से 91 तक की आयतों में दुष्टों और धोखेबाज़ों से युद्ध का निर्देश देते हुए व्याख्या की गई है कि : "अगर वे तुम से दूर हो जाएं और लड़ाई से रुके रहें और तुम्हारी तरफ़ शान्ति एवं मित्रता का हाथ बढ़ाएँ तो अल्लाह ने तुम्हारे लिए उन पर हाथ उठाने की कोई राह नहीं रखी है।"

दुष्टों एवं दंगाइयों को शिक्षाप्रद पराजय देने के लिए हर प्रकार की आवश्यक "शक्ति" और सामरिक साधनों को उपलब्ध करने का निर्देश देते हुए भी क़ुरआन शान्ति की इच्छा का जवाब शांति की चेष्टा से ही देने की ताकीद करता है।

> "और हे नबी, अगर दुश्मन सुलह और सलामती की ओर तैयार हों तो तुम भी इसके लिए तैयार हो जाओ और अल्लाह पर भरोसा करो, निश्चय ही वही सब कुछ सुनने वाला और जानने वाला है।" –8 : 61

इन व्याख्याओं से यह सत्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम का मौलिक और स्थायी उद्देश्य शांति है, जबकि युद्ध एक अस्थायी और क्षणिक घटना है, एक सामयिक संकट है, जिसको दूर करने के लिए कुछ उचित शर्तों के साथ और निश्चित सीमाओं के अन्दर शक्ति का प्रयोग न केवल वैध बल्कि आवश्यक है।

बहरहाल, इस्लाम के मानने वालों के लिए युद्ध नाम है सत्य एवं असत्य की लड़ाई का, जिसमें सम्मिलित होकर उन्हें अपने ईमान का सबूत देने के लिए असत्य के विरुद्ध सत्य के लिए जान लड़ानी है। इसीलिए इस्लामी जिहाद का दूसरा नाम 'शहादत-ए-हक़' अर्थात् अपने कर्मों से सत्य की गवाही देना और उसकी सुरक्षा में जान-व-माल और आबरू सब का ख़तरा मोल लेना है। सामूहिक हितों और मानवता की सुरक्षा के लिए क़ुरबानी देनी है। यह जिहाद जिसका अर्थ ख़ुदा की राह में सतत् प्रयास है, जीवन के हर पल और हर क्षेत्र में अल्लाह पर ईमान रखने वालों को ईश्वरीय आदेशों के अनुसार अपनी अन्तिम साँस तक अपनी पूरी शक्ति के साथ करना है।

इस्लामी जिहाद की इसी शान का एक मुख्य पहलू प्रत्येक स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों की मर्यादाओं को निभाना है, उस समय तक जब तक कि दूसरा पक्ष विश्वासघात और अपने समझौते को तोड़ने के लिए तत्पर न हो जाए, जिसके बाद उसके विरुद्ध किसी कार्रवाई से पहले समझौते के ख़त्म होने की घोषणा कर देनी है। क़ुरआन में है—

> "हाँ, यदि वे धर्म के मामले में तुम से सहायता माँगें तो उनकी सहायता करनी तुम पर अनिवार्य है, लेकिन किसी ऐसी जाति के विरुद्ध नहीं जिससे तुम्हारा समझौता हो।" –8 : 72
>
> "और अगर तुम्हें किसी जाति से विश्वासघात की आशंका हो तो उसकी संधि को खुल्लम-खुल्ला उसके आगे फेंक दो।" –8 : 58

हुदैबिया संधि के बाद रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने मक्का विजय की कार्रवाई क़ुरआन की उपर्युक्त निर्देशों के अनुसार ही की।

शान्ति और युद्ध की इस्लामी कल्पना से अधिक यथार्थवादी और न्यायोचित कल्पना इस भौतिक संसार में असम्भव है और न इतिहास के पर्दे पर कभी उभरी है।

इस्लाम का फ़ौजदारी विधान

शांति एवं युद्ध की इस्लामी कल्पना ही के समान इस्लामी धारा का वह क़ानून है, जो फ़ौजदारी क़ानून (Criminal Law) कहलाता है और उसके दबदबे का हाल यह है कि आज की सभ्य कहलाने वाली दुनिया उसकी कल्पना से ही काँप जाती है। यही कारण है कि नित्य पाश्चात्य और भारतीय प्रेस में इसके विरुद्ध आलोचनात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित होती रहती हैं, यहाँ तक कि मुस्लिम देशों में जब इस्लामी शरीअत को लागू करने की घोषणा होती है तो तथाकथित सभ्य लेखकगण उसका मज़ाक़ उड़ाना शुरू करते हैं कि यह तो मध्यकालीन अंधकारमय युग की ओर पलटने के समान है, फिर उसकी भयानक तस्वीरें खींच कर लोगों को डराते हैं। यह

सारा मज़ाक़ और कटाक्ष और भय केवल अज्ञानता एवं मूर्खता पर आधारित है। पश्चिमी मानसिकता एवं चरित्र रखने वालों की दुर्भावनाएँ और पक्षपात तथा विलासताएं भी इस अंधता एवं विपन्नतापूर्ण क्रिया के प्रेरक हैं। इस्लामी विधान पर टिप्पणी करने वाले भूल जाते हैं कि यह विधान एक पूरी जीवन-व्यवस्था का अंग है, जो सामूहिक एवं सामान्य रूप से पूर्ण सामाजिक न्याय और सामाजिक शान्ति की ज़मानत देता है। इस व्यवस्था में अपराधों की सज़ाएँ इस धारणा पर प्रस्तावित की गई है कि इस्लामी राज्य अपराध की सभी सम्भावनाओं को नष्ट कर देगी, जिसके बाद भी अगर कोई व्यक्ति क़ानून भंग करता है तो इसका अर्थ यह है कि उसके स्वभाव ही में फ़साद है और वह अपने स्वार्थों और इच्छाओं की पूर्ति के लिए पूरे समाज को ख़तरे में डालने के लिए तैयार हो गया है। भलाई एवं सुगढ़ता और रहमत व बरकत से परिपूर्ण इस्लामी शरीअत ऐसे ख़तरनाक अपराधी को हरगिज़ इस बात का अवसर नहीं देना चाहती कि वह समाज में बिगाड़ और भ्रष्टाचार फैलाए और जन साधारण का सुख-चैन नष्ट कर दे। अतः शरीअत सामूहिक हितों को ध्यान में रखते हुए अपराधियों के विरुद्ध कठोर सज़ाएँ प्रस्तावित करती है, जिनका उद्देश्य स्पष्टतः अपराधों को जड़-मूल से समाप्त करना है।

इस सम्बन्ध में इस्लामी राज्य की रणनीति यह है कि किसी भी स्थिति में अपराधों को प्रोत्साहन देकर अपराधियों को न पाला जाए। लेकिन इस्लामी दण्ड-विधान (Criminal Law) को ऐसे कठोर साक्ष्य विधान के अधीन लागू किया जाता है, जिसमें त्रुटि की सम्भावना कम से कम होती है और अभियुक्तों को अपराधी उसी समय घोषित किया जाता है, जब वह पूरी न्यायिक कार्रवाई के बाद अपराधी सिद्ध हो जाता है। उदाहरणस्वरूप ज़िना (व्यभिचार) का आरोप सिद्ध करने के लिए चश्मदीद गवाहों की जो शर्त है उसका पूरा करना आसान नहीं। क़त्ल (हत्या) के सबूत के लिए भी प्रत्यक्षदर्शी गवाह आवश्यक है। यही मामला चोरी की सज़ा का है। इस्लाम इंसान को निर्दोष मानता है, जब तक कि वह अपराधी साबित न हो जाए, लेकिन अपराध के सिद्ध होने के बाद कोई नरमी शरीअत को स्वीकार्य नहीं। प्रथमतः जिसके विरुद्ध अपराध हुआ है, उसकी क्षतिपूर्ति आवश्यक है, दूसरा लक्ष्य अपराध की प्रवृत्ति रखने वालों को चेतावनी देना भी है, तीसरे अपराधी का अपना सुधार भी प्रभावकारी सज़ा के बिना सम्भव नहीं, हल्की सज़ाओं से छूट कर बार-बार अपराध करने वाले ही आदी और पक्के अपराधी बन कर समाज के लिए समस्या पैदा करते हैं। इस्लामी व्यवस्था में अपराध की घटना कभी-कभार ही होगी, सज़ा मुश्किल होगी लेकिन कठोर होगी।

यह वस्तुस्थिति प्रचलित पश्चिमी व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है, जिस में सर्वप्रथम

अपराध की प्रेरणाएँ बहुत अधिक हैं। दूसरे, सज़ाएँ बहुत हल्की हैं। तीसरे, नवीनतम कल्पनाओं के अन्तर्गत जेलों को विलासिता का केन्द्र बनाया जा रहा है। ये सारी बातें इस ग़लत अवधारणा का परिणाम हैं कि अपराध एक साधारण भूल है, जो किसी से भी हो सकती है, क्योंकि पश्चिमी दर्शन के अनुसार हर आदमी की प्रकृत्ति में एक वहशी (दानव) छिपा हुआ है, अतः अपराधियों के साथ कठोरता के बजाए नरमी होनी चाहिए और इस प्रकार उनको अपना सुधार स्वयं करने का अवसर देना चाहिए। यह मानवीय मानसिकता का विचित्र विश्लेषण है, जो किसी तर्क और औचित्य पर आधारित नहीं है, बल्कि केवल इच्छा और हवस की उपज है। आज बड़े-बड़े अपराधी देश और राष्ट्र के नायक बने हुए हैं। बड़े-बड़े देशों के राष्ट्राध्यक्षों और प्रधानमंत्रियों का निजी जीवन पाप से परिपूर्ण है। वे अपनी विलासिता और मौजमस्ती के लिए किसी की भी प्रतिष्ठा पर डाका डाल सकते हैं। वर्तमान लैटिन समाज में चारित्रिक शुद्धता एवं सतीत्व की कोई कल्पना शेष नहीं है। उदारवादिता और स्वेच्छाचारिता के शब्द एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं। पापियों की इस भीड़ में किसी पापी पर पहला पत्थर कौन फेंकेगा ? कोई नहीं ! इसलिए कि सब पापी हैं और पाप से भरपूर जीवन पर उन्हें सहमति ही नहीं, बल्कि प्रसन्नता और गर्व भी है।

इस्लाम इस प्रकार के अपवित्र और अपराधपूर्ण जीवन को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं, जो आधुनिक विकृत (Perverse) समाज का आदर्श है। इस्लाम में अपराध और दण्ड की परिकल्पना, इस समय की प्रचलित विभिन्न कल्पनाओं से अलग है। वास्तव में इस्लामी विधान न्याय (Justice)) पर बल देता है न कि दया (Mercy) पर, इसलिए कि विधान विधान है और राज्य का नियम है। किसी का निजी मामला नहीं है। अतः क़ानून के दायरे में आ जाने वाले की पकड़ पूरी दृढ़ता से होनी चाहिए और उससे सम्बन्धित निर्णय बिना किसी नरमी और छूट के स्पष्ट रूप में होना चाहिए, जिस के बाद सज़ा लागू करने से पहले कुछ मामलों में दोनों पक्षों को समझौते की अनुमति दी जा सकती है, मुद्दई (वादी) को सज़ा में कमी करवाने का अधिकार भी मिल सकता है और मुद्दआ अलैह (प्रतिवादी) क्षतिपूर्ति भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में क़ुरआन, तौरात में वर्णित मूसवी शरीअत के मौलिक क़ानून की पुष्टि इस प्रकार करता है :

> "तौरात में हमने यहूदियों को यह आदेश दिया था कि प्राण के बदले प्राण, आँख के बदले आँख, नाक के बदले नाक, कान के बदले कान, दाँत के बदले दाँत, और सब आघातों के लिए बराबर का बदला। फिर जो बदला न लेकर क्षमा कर दे तो वह उसके लिए प्रायश्चित होगा। और जो लोग अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के अनुसार फ़ैसला न करें वही अत्याचारी हैं।" —5 : 45

हैं ।" –5 : 45

इस आयत के अनुसार हाकिम को ईश्वरीय दण्ड-विधान के अनुसार ही निर्णय करना है, भले ही उसके बाद पीड़ित व्यक्ति अपनी इच्छा से अपराधी को क्षमा कर दे । यही बात क़ुरआन में एक-दूसरे स्थान पर मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए कही गई है :

"हे ईमान वालो ! तुम्हारे लिए हत्या के मामले में हत्या-दण्ड का आदेश लिख दिया गया है । स्वतंत्र व्यक्ति ने हत्या की हो, तो उस स्वतंत्र व्यक्ति से ही बदला लिया जाएगा, ग़ुलाम हत्यारा हो तो वह ग़ुलाम ही मारा जाए, और स्त्री ने यह अपराध किया हो तो उस स्त्री ही से बदला लिया जाए । हाँ, यदि किसी हत्यारे के साथ उसका भाई (वादी) कुछ नर्मी करने के लिए तैयार हो तो सामान्य नियम के अनुसार ख़ून के बदले भुगतान राशि का निर्णय होना चाहिए और हत्यारे के लिए आवश्यक है कि भले तरीक़े से अर्थ-दण्ड चुका दे । यह तुम्हारे प्रभु की ओर से छूट और दयालुता है । इस पर भी जो ज़्यादती करे उसके लिए दुखदायिनी यातना है— बुद्धि और समझ वालो तुम्हारे लिए हत्यादण्ड में जीवन है । आशा है कि तुम इस विधान के उल्लंघन से बचोगे ।" –2 : 178-179

यह है मानवीय समानता के साथ-साथ मानव बन्धुत्व का घोषणा पत्र । इस्लामी विधान की दृष्टि में सब समान हैं, कोई बड़ा या छोटा नहीं । लोगों के बीच कोई अनुचित भेदभाव नहीं । अपराधी केवल अपराधी है और दण्डित होने योग्य है, कोई व्यक्ति बड़ी से बड़ी क़ीमत पर न्याय ख़रीद नहीं सकता, फ़ैसला तो न्यायोचित होगा, जिसके बाद क्षमा का सब अधिकार पीड़ित व्यक्ति या उसके उत्तराधिकारी को है और अपराधी नत-मस्तक होकर उसकी दया और कृपा पर आश्रित है । ऐसे ही निष्पक्ष न्याय में वास्तविक जीवन का रहस्य निहित है, न कि उन खोखली रिआयतों में जिन्होंने मौजूदा ग़ैर-इस्लामी समाज को मौत से भी बदतर हालत में डाल दिया है और उस पर हर समय भय एवं आतंक के साये मंडराते रहते हैं, कुछ विशेष लोगों की मामूली विलासिता के लिए साधारण जन समूह पर एक स्थायी अभिशाप थोप दिया गया है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस्लाम की सामूहिक व्यवस्था के अंतर्गत उसका फ़ौजदारी क़ानून पाशविक प्रकृति की भयावहता को दबा कर सभ्यता एवं संस्कृति के उन मूल्यों का पोषण करता है जो समाज में सुख, शांति, समृद्धि और सन्तुष्टि की भावना को बढ़ावा देते हैं, लेकिन दूसरी ओर आधुनिक पाश्चात्य धर्मविहीन समाज निरन्तर दुष्टता एवं भ्रष्टाचार, शोर एवं हंगामा, आतंकवाद और असंतोष का शिकार है,

क्योंकि एक प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत उसके संवैधानिक नियम बहुत कमज़ोर हैं और बहुधा टूटते, टूट-टूट कर बदलते और बदल बदलकर टूटते रहते हैं ।

इस्लाम में सहिष्णुता

इस्लामी क़ानूनों की रूपरेखा जो भी हो, और वह अपनी जगह बिल्कुल उचित है, लोगों के आपस में बर्ताव– विशेषकर ग़ैर-मुस्लिमों के साथ बर्ताव– के मामले में इस्लाम अत्यन्त सहिष्णुता की शिक्षा देता है । इस सम्बन्ध में क़ुरआन की शिक्षाएँ अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण सहिष्णुता, उदारता और विशाल हृदयता पर आधारित हैं । जीवन के सही एवं ग़लत रास्तों की हक़ीक़त स्पष्ट होने के बावजूद घोषित किया जाता है :

> "धर्म के विषय में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है ।" –2 : 256

यहाँ तक कि बहुदेववादी ईश्वर के अतिरिक्त जिन देवताओं की पूजा करते हैं उन्हें अपशब्द कहने से भी मना किया जाता है–

> "और (हे ईमान वालो) ये लोग अल्लाह के सिवा जिनको पुकारते हैं उन्हें गालियाँ न दो ।" –6 : 108

फिर किताबवाले अर्थात् यहूदियों और ईसाइयों से अपील की जाती है कि वे मुसलमानों के साथ एक ऐसी बात पर सहमत हो जाएँ जो सबके विश्वास में समान है–

> "कहो, हे किताब वालो, आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच समान है । वह यह कि हम ईश्वर के सिवा किसी की बन्दगी न करें, उसके साथ किसी को साझी न ठहराएँ और हममें से कोई ईश्वर के सिवा किसी को अपना प्रभु न बना ले ।" –3 : 64

सब से बढ़कर यह कि मुसलमानों के विरुद्ध विधर्मियों की अत्यन्त धार्मिक दुश्मनी और उनके द्वारा इबादत में प्रतिरोध के बावजूद मुसलमानों को निर्देश दिया जाता है कि वे दूसरों की शत्रुता से उत्तेजित हो कर न्याय-मार्ग न छोड़ें । लोगों के हर प्रकार के विरोधों के बीच भी नेकी के कामों में उनके साथ सहयोग करें और बुरी बातों में किसी के साथ कोई सहयोग न करें :

> "और देखो, एक गिरोह ने जो तुम्हारे लिए प्रतिष्ठित मस्जिद (काबा) का रास्ता बन्द कर दिया है, तो इस पर तुम्हारा क्रोध तुम्हें इतना उत्तेजित न कर दे कि तुम भी उनके मुक़ाबले में अनुचित ज़्यादतियाँ करने लगो । नहीं, जो काम नेकी और ईश-परायणता के हैं उनमें सबको सहयोग दो और जो गुनाह और ज़्यादती के काम हैं उनमें किसी को अपना सहयोग न दो ।"
>
> –5 : 2

धर्म का प्रचार भी हिकमत (सूझ-बूझ) के साथ करने की ताकीद की गई है—

"हे नबी, अपने प्रभु के मार्ग की ओर बुलाओ हिकमत और सदुपदेश के साथ, और उन लोगों से वाद-विवाद करो तो ऐसे ढंग से जो उत्तम हो।"

—16 : 125

अनुचित आक्षेपों और आरोपों का जवाब भी सहनशीलता और क्षमा एवं शुभचिन्तन से देने का महत्त्व बताया गया है—

"और हे नबी, भलाई और बुराई समान नहीं हैं। तुम बुराई को उस नेकी से टालो, जो उत्तम हो। तुम देखोगे कि तुम्हारे साथ जिसका वैर था वह आत्मीय मित्र बन गया है।" —41 : 34

संधि और मैत्री चाहने वाले विधर्मियों एवं मुशरिकों के साथ सामान्यतः अच्छे बर्ताव की अनुमति एवं महत्व है—

"अल्लाह तुम्हें इस बात से नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ नेकी और इंसाफ़ का बर्ताव करो, जिन्होंने धर्म के मामले में तुमसे युद्ध नहीं किया है और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला। अल्लाह इंसाफ़ करने वालों को पसन्द करता है।" —60 : 8

इस्लामी सहिष्णुता का सबसे बड़ा प्रतीक स्वयं तौहीद (एकेश्वरवाद) में विश्वास है, जो एक ईश्वर, एक इंसान की मौलिक एवं सैद्धान्तिक कल्पना के अधीन पूरी मानवता का एकीकरण करके विभिन्न सम्प्रदायों के बीच भावात्मक एवं नैतिक एकता की शिक्षा देता है। जैसा कि हम ईश्वरीय आज्ञापालन में किताब वालों (ईसाई, यहूदी) को एक सर्वसम्मत बिन्दु की ओर आने के आह्वान में देख चुके हैं। एकेश्वरवाद ही के अन्तर्गत इस्लाम का वह महान ईशदूतत्त्व का विश्वास है, जिसके अनुसार बिना किसी भेद-भाव के सभी नबियों और रसूलों पर ईमान लाना आवश्यक है। यह मानो विश्व-बन्धुत्व की घोषणा है। इसके बाद तौहीद व रिसालत के विश्वासों के इसी व्यापक दृष्टिकोण का यह विशिष्ट वैभव है कि शराफ़त व इज़्ज़त का एक ही मापदण्ड 'ईश-भय' और परहेज़गारी को बना कर मानव समता की मान्यता को पुष्ट कर दिया गया है—

"रसूल ने उस मार्ग-दर्शन को माना, जो उसके प्रभु की ओर से उस पर उतरा है। और जो लोग इस रसूल के मानने वाले हैं, उन्होंने भी इस मार्गदर्शन को दिल से मान लिया है। ये सब ईश्वर और उसके फ़रिश्तों और उसकी किताबों और उसके रसूलों को मानते हैं और इनका कहना यह है कि "हम ईश्वर के रसूलों को एक-दूसरे से अलग नहीं करते, हमने सुना और आज्ञाकारी हुए। मालिक, हम तुझसे क्षमा के इच्छुक हैं और हमें तेरी

ही ओर पलटना है।" –2 : 285

"लोगो ! हमने तुमको एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और फिर तुम्हारी जातियाँ और बिरादरियाँ बना दीं, ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो। वास्तव में अल्लाह की दृष्टि में तुम में सबसे ज़्यादा प्रतिष्ठित वह है जो तुम में सबसे अधिक परहेज़गार है।" –49 : 13

आतंकवाद : इस्लाम की दृष्टि में

इस्लाम धर्म के विश्वासों और नैतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि इस्लाम आतंकवाद और आतंकवादी गतिविधियों को सहन नहीं करता है। वस्तुत: इस्लामी जीवन-व्यवस्था मनुष्य को उन सभी पाश्विक प्रवृत्तियों, मानसिक उलझनों और आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता से मुक्ति दिलाती है, जो वर्तमान युग के प्रचलित दर्शनों और विज्ञान ने अपने अविष्कारों और अन्वेषणों की त्रुटि से मानव-प्रकृति के अन्दर खोज निकाली हैं या उन पर थोप दी हैं। वास्तव में यह आधुनिक भौतिकवाद, मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र की कल्पनाएँ हैं जिन्होंने इंसान की प्रकृति और आवश्यकताओं को आधार बनाकर मनुष्य को निरे पाश्विक आधार पर इस प्रकार गिरोह और वर्गों में विभक्त किया है कि आपस में आकर्षण और सहयोग के बजाय तनाव और संघर्ष मानवीय इतिहास की नियति बन गया है। अत: हर व्यक्ति और गिरोह दूसरे व्यक्ति और गिरोह के साथ सिर्फ़ अपने स्वार्थ एवं लाभ की पूर्ति के लिए संघर्षरत है। अविश्वास और स्वार्थ-लोलुपता के कारण व्यक्ति और समूहों, क़ौमों और देशों के बीच निरंतर संघर्ष हो रहा है। लेकिन इस्लाम एक सृष्टिकर्त्ता के द्वारा मानव का सृजन सारे मानव को एक मर्द और एक औरत की संतान और ईश परायणता एवं परहेज़गारी को सम्मान एवं प्रतिष्ठा का एकमात्र मापदंड स्थिर करके मानव-जगत् में युद्ध एवं संघर्ष के प्रेरक तत्त्वों का औचित्य समाप्त कर देता है और समझौता एवं शांति की सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक वास्तविकता पर ताकीदी निशान लगा देता है।

यही कारण है कि बहुदेववाद और एकेश्वरवाद की तुलना करते हुए क़ुरआन ईमानवालों को शांति का विशेष अधिकारी घोषित करता है—

"दोनों दलों (मोमिन व मुशरिक) में से कौन अधिक निश्चिन्तता का अधिकारी है ? बताओ अगर तुम्हें कुछ ज्ञान है। वास्तव में तो निश्चिन्तता (अमन) उन्हीं के लिए है और सही मार्ग पर वही हैं जो ईमान लाए और जिन्होंने अपनी आस्था को अन्याय के साथ लिप्त नहीं किया।"–6 : 82-83

'ईमान' और 'मोमिन' शब्द जिस मूल धातु से बने हैं अर्थात् 'अ-म-न' उसका उच्चारण अमन ही है। इस प्रकार ईश्वर पर पूर्ण विश्वास, जो ज़ुल्म से पाक हो, शांति

का कारण और गारण्टी है। अतः शांति का वास्तविक सम्मान और उसकी सुरक्षा भी ईमानवाले ही कर सकते हैं। इसी यथार्थ को दृष्टि में रखते हुए क़ुरआन ने अशांति, भ्रष्टाचार और दुष्टता को क़त्ल (हत्या) से भी बड़ा अपराध घोषित किया है।

"और फ़ितना रक्तपात से भी अधिक संगीन (अपराध) है।"

यह बात उस आतंकवाद के सम्बन्ध में कही गई है, जो मक्का के काफ़िरों ने मुसलमानों के विरुद्ध जारी कर रखा था। ये काफ़िर लोग निर्दोष और शांतिप्रिय मुसलमानों के विरुद्ध निरन्तर आतंकवादी कार्रवाइयाँ करके उन्हें हर प्रकार से आतंकित एवं परेशान किया करते थे। अतः क़ुरआन ने उनकी इस यातना दायक दुष्टता और बर्बरता को उपद्रवजनित षड्यंत्र की संज्ञा दी और उसे जघन्य अपराध बतलाया। क्योंकि इससे पूरे समाज में विनाश फैल रहा था और लोगों का सुख-चैन नष्ट हो रहा था।

इन संकेतों से ज्ञात होता है कि आतंकवाद की विभीषिका इस्लाम की दृष्टि में कठोरतम दण्ड की अधिकारी है और एक न्यायप्रिय सरकार तथा सदाचारी समाज को अपने सभी साधनों और पूरी शक्ति से काम लेकर आतंकवादियों का दमन और आतंकवाद की कमर तोड़नी चाहिए। इस्लामी राज्य हरगिज़ किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को, उनकी शिकायतें जो भी हों, इस बात की अनुमति नहीं देता कि वह क़ानून अपने हाथों में लेकर मनमानी करें। उनकी जायज़ शिकायतें दूर करने के लिए इस्लामी न्यायालय मौजूद हैं, जिस के फ़ौजदारी क़ानून की सारी कठोरता ज़ालिमों और अपराधियों के विरुद्ध हैं। अतः अगर कोई पीड़ित है तो उसकी सुरक्षा और उसकी क्षति पूर्ति सरकार स्वयं करेगी, पीड़ित को अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए भी ज़ालिम बनने की आवश्यकता नहीं है।

आतंकवाद एक बर्बरतापूर्ण कार्य है और इस्लाम की सभ्य व्यवस्था में इसकी कोई गुंजाइश नहीं। इस्लाम इंसान को केवल ईश्वर का भय दिलाता है, अतः वह किसी इंसान को इसकी अनुमति नहीं दे सकता कि वह लोगों को अपना भय दिलाए और उन्हें भयभीत करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति करे। समाज में तनाव और संघर्ष इस्लाम को गवारा नहीं, वह हर प्रकार के संघर्ष और चपक़लश समाप्त करके एक शांतिपूर्ण वातावरण में व्यक्तियों के बीच प्रेम, सौहार्द, भाईचारा और सामूहिक कल्याण के कामों में सहयोग के अवसर पैदा करना चाहता है, ताकि ईश्वर के बन्दे एकाग्रता के साथ अपनी और जगत् की सृष्टि के उद्देश्यों की पूर्ति में बेरोक-टोक क्रियशील रहें। दुनिया में सत्यनिष्ठा और ईश-परायणता के साथ सद्व्यवहार करके आख़िरत की सफलता का प्रबन्ध करें।

इस्लामी जिहाद की शान यह है कि अत्याचारी सत्ता के समक्ष सत्य की स्पष्ट

घोषणा करना इसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है और ज़ालिम को उसके ज़ुल्म से रोकने की कोशिश ईमान की पहचान है, क्योंकि लोगों को बुराई से मना करना और अच्छाई की शिक्षा देना उम्मत-ए-मुस्लिमा (मुस्लिम समुदाय) का उत्कृष्ट चरित्र और अनिवार्य कर्त्तव्य है। यह जिहाद बुराई के विरुद्ध अच्छाई का संघर्ष है और असत्य के साथ सत्य की पंजा आज़माई है, जिसमें शक्ति का प्रयोग किसी विध्वंसक कार्रवाई के लिए नहीं, केवल रचनात्मक उद्देश्यों के लिए होगा। यह सत्यनिष्ठा और सत्य के लिए यत्न आतंकवाद और आतंकवादी गतिविधियों के लिए मृत्यु संदेश है, चाहे इसका अभियुक्त कोई भी हो, कोई संगठन करे या कोई सरकार।